RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल.-011/2021-23

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्षः 49, अंक : 52 एक प्रति 2 : रुपये
कुल पृष्ठ : 8
रविवार 26 मार्च , 2023
विक्रमी सम्वत् 2080, सृष्टि सम्वत् 1960853124
दयानन्दाब्द : 199 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये
आजीवन शुल्क : 1000 रुपये

दूरभाष : 0181-2292926, 5062726
E-mail: apspunjab2010@gmail.com,
www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष–49, अंक : 52, 23-26 मार्च 2023 तदनुसार 13 चैत्र, सम्वत् 2080 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

हे मनुष्य! अपने अन्तःकरण में मेरी उपस्थित का बोध करो

ले०-आचार्य ज्ञानेश्वरार्य

अहमिन्द्रो न पराजिग्य इद् धनं,
न मृत्यवेऽवतस्थे कदाचन।
सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु,
न मे पूरवः सख्ये रिषाथन।।

ऋग्वेद १०/४८/५

शब्दार्थ-अहम् = मैं, **इन्द्रः** = ऐश्वर्यशाली हूँ, **न** = नहीं, **पराजिग्य** = रहित होता हूँ, **इद्** = कभी भी, **धनम्** = ऐश्वर्य से, **न** = नहीं, **मृत्यवे** = मृत्यु, **अवतस्थे** = आती है, **कदाचन** = कभी भी, **सोमम्** = उत्तम कर्म, **सुन्वन्तः** = करते हुए, **इत्** = ही, **मा** = मुझसे, **वसु** = ऐश्वर्य को, **याचत** = मांगो, **न** = नहीं, **मे** = मेरी, **पूरवः** = उपासकों, **सख्ये** = मित्रता बनाये रखना, **रिषाथन** = इससे आप नष्ट नहीं होओगे।

भावार्थ-मन्त्र में परमेश्वर मनुष्यों को उपदेश करता है कि हे मनुष्यो! मैं ज्ञान, बल, आनन्द आदि ऐश्वर्यों से परिपूर्ण हूँ, मेरे ऐश्वर्य को देखना हो तो सृष्टि की विविध रचनाओं को देखो। चित्र-विचित्र अद्भुत विस्मयकारी प्राकृतिक जड़-चेतन कृतियाँ देखने से आप मेरे ऐश्वर्य का अनुमान लगा सकते हैं। फल, फूल, अन्न, वनस्पति, कन्द, मूल, औषधि तथा भूमिगत हीरा-मोती, माणिक आदि रत्न, सोना-चाँदी, तांबा, लोहा आदि धातुएँ, पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि के शरीरों की रचना तथा सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, ग्रह, उपग्रह, नक्षत्र आदि ब्रह्माण्ड का विशाल आकार तथा स्वरूप से आपको मेरे सामर्थ्य, शक्ति का बोध हो ही जायेगा, फिर वेदों के हजारों मन्त्रों में वर्णित समस्त संसार के पदार्थों के नाम, गुण-कर्म-स्वभाव, उनका उपयोग आदि के बोध से भी मेरी श्रेष्ठता का पता चल ही जायेगा।

हे मनुष्यो! मैं कभी आपकी तरह शरीर धारण नहीं करता अर्थात् न जीता हूँ, न मरता हूँ। मैं सदा से अनादि काल से सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, अनन्त, सर्वशक्तिमान् रूप में चला आया हूं और मेरा कभी विनाश भी नहीं होगा। मैं अनादि, अनन्त हूँ। किन्तु अपनी सर्वव्यापकता से, सर्वज्ञता से, सर्वान्तर्यामी होने से समस्त ब्रह्माण्ड के कण-कण का नियमन करता हूँ। मुझे सांसारिक रचना, रक्षण, पालन, विनाश, कर्मफल देने के लिए अवतार लेने की आवश्यकता नहीं होती है। शरीर धारण की आवश्यकता तो एकदेशी अल्पज्ञ, अल्पशक्तिमान् जीव को होती है।

हे ऐश्वर्य की कामना करने वालो! मैं आप सब मनुष्यों को आह्वान् करता हूँ कि आप मेरे पास आओ, अपने अन्तःकरण में मेरी उपस्थिति का बोध करो, मैं सदा से आपके साथ हूँ, साथ था और भविष्य में सदा साथ रहूँगा। तुम मेरे से ऐश्वर्य माँगो, उत्तम स्वास्थ्य, साधन, धन, सम्पत्ति, दीर्घायुष्य, प्रतिष्ठा, यश, कीर्ति, परम आनन्द, शान्ति, संतोष, निर्भीकता मेरे से माँगो। मैं सब कुछ दे सकता हूँ पर शर्त यह है कि आप मेरे द्वारा बताये गये विविध-विधानों का, वेदादि सत्य शास्त्रों को पढ़कर, समझकर उनका अत्यन्त श्रद्धा, त्याग, तप, पुरुषार्थ के साथ परिपालन करो। स्वाध्याय, सत्संग, प्रवचन, परिचर्चा, संवाद, प्रश्नोत्तर आदि के माध्यम से शुद्ध ज्ञान का निष्पादन करते हुए आत्मबोध करो।

आत्मबोध करने के पश्चात् वेदादि शास्त्र विहित उत्तम कार्यों का सम्पादन करो। स्मरण रखो कि उत्तम कर्मों के कर्त्ता को निश्चित ही स्वार्थी, आज्ञानी व्यक्तियों द्वारा विविध प्रकार की बाधाएँ पहुँचायी जाती हैं किन्तु उन बाधाओं का समाधान निकालने के लिए मेरे से एकान्त स्थान पर बैठकर मेधाबुद्धि की याचना करो, कठिनाईयों को सहन करने के लिए मेरे से साहस, बल, धैर्य की प्रार्थना करो। विरोधों को टालने के लिए मेरे से पराक्रम उत्साह को मांगो, मैं अवश्य ही इन आध्यात्मिक गुणों को प्रदान करूँगा। मेरे पर विश्वास रखो, सच्चे हृदय से की गई प्रार्थी की प्रार्थना को मैं सुनकर उसे पूरी करता ही हूँ।

हे अविनाशी जीवो! मैं तुम्हें उत्तम से उत्तम, अनमोल, दिव्य, ऐश्वर्य प्रदान करूँगा। कहाँ तुम तुच्छ, क्षणिक दुःख मिश्रित, भय-संताप से युक्त विषय भोगों के साधनों के संग्रह में ही जीवन व्यतीत कर रहे हो? ये प्राकृतिक विषय-सुख विकारी हैं, परिणामी हैं, दुःखदायी हैं और अन्त में वियोग को प्राप्त होने वाले हैं। मैं तुम्हें ऐसा अजर, अमर, अविनाशी, अलौकिक आनन्द प्रदान करूँगा, जिसे कोई छीन नहीं सकता है, चुरा नहीं सकता है, नाश भी नहीं कर सकता है। हे श्रेयपथगामी मनुष्यो! तुम मेरे सान्निध्य में, मेरे अनुशासन में, मेरी मित्रता में, जीवन व्यतीत करोगे तो तुम्हारा कोई विनाश नहीं कर सकता, न तुम्हें कोई दुःखी बना सकता है, न डरा सकता है।

हे विनाश को प्राप्त होने वाले शरीरों में निवास करने वाले जीवो! आओ जैसे मैं अजर-अमर हूँ वैसे ही मैं तुम्हें भी अपनी अजरता, अमरता का बोध करा दूँगा। बस मेरी मित्रता कर लो, मेरा साथ पकड़ लो।

अध्यात्मिकता और पुरुषार्थ

ले.-डा. सत्यदेव 507-गोदावरी ब्लाक, अशोका सिटी कृष्णा नगर-मथुरा

सर्वप्रथम हम आध्यात्मिकता के विषय में किञ्चित् जानने का प्रयास करते हैं-संसार के अधिकतर मनुष्य आध्यात्मिकता को अच्छा समझते हैं, परन्तु बहुत थोड़े मनुष्य ऐसे होंगे जो शब्द को अच्छा मानने के साथ इसका प्रायोजन भी समझते हैं। मानव का बाह्य भाग शरीर है तथा भीतरी भाग आत्मा है। अत: आध्यात्मिकता शब्द ही जो (आत्मा से सम्बन्धित है), यह स्पष्ट करता है कि आध्यात्मिकता का प्रायोजन मनुष्य के बाह्य रूप से सम्बन्धित नहीं हो सकता, प्रत्युत इसका सम्बन्ध भीतरी भाग से है। रूह (आत्मा) को हम गुणी तथा रुहानियत को (अध्यात्मिकता) का गुण कह सकते हैं।

आध्यात्मिकता का प्रायोजन आत्म-स्वाध्याय (self study) है। मनुष्य जब बाहर न देखकर अपने भीतर देखता है और अपनी ही स्थिति पर विचार करता है तभी उसको यह योग्यता प्राप्त होती है कि वह अपनी की हुई बुराई-भलाई पर नि:स्वार्थ भाव से, निष्पक्षता से दृष्टि डाल सके। मानो वह किसी अन्य के खरे-खोटे कर्मों का अवलोकन कर रहा है। इस योग्यता का नाम आध्यात्मिकता है। बहुत से मनुष्य ऐसे होते हैं जो पाप करके उसको छुपाया करते हैं और डरते भी हैं, कि उनकी पोल न खुल जाए। कुछ ऐसे व्यक्ति भी होते हैं जो सोच-विचारकर, सद्भावनापूर्वक भूल (पाप) करते हैं, परन्तु वे इसे पाप नहीं मानते। ये दोनों प्रकार के व्यक्ति वास्तव में आध्यात्मिकता से रहित होते हैं।

आध्यात्मिकता का प्रथम प्रायोजन या काम यही है कि मनुष्य को उसकी भूलों से परिचित करा देना। जब मनुष्य भूल को समझता है, तभी उसको त्यागता है। इस रीति से जब एक दोष उससे छूट जाता है तब वह देवपुरुष या धर्मात्मा बन जाता है। पाप छोड़ने के परिणाम का एक दूसरा पहलू यह भी है और उसका नाम 'आत्म-बल' है। आत्मा कैसे बलवान् होता है और कैसे निर्बल होता है? इस प्रश्न का उत्तर यही है कि जितने कर्म आत्मा के प्रतिकूल किए जाते हैं उनसे आत्मा में दुर्बलता आ जाती है तथा जितने काम आत्मा के अनुकूल किये जाते हैं उनसे आत्मा बलवान हुआ करता है।

ऊपर लिखी सब बातों को मिलाकर विचारने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि आत्मा के बलवान बनाने का साधन आध्यात्मिकता ही है। जिस प्रकार शरीर का स्वरूप बाहर-भीतर होता है, उसी प्रकार से आत्मा का रूप भी भीतर-बाहर होता है। **जब आत्मा निर्बल होता है तब वह अपने बाहर कार्य करने वाला होता है,** परन्तु यह आवश्यक नहीं कि बाहर कार्य करने वाला प्रत्येक आत्मा निर्बल होता है। परन्तु यह आवश्यक है कि निर्बल आत्मा अपने बाहर ही कार्य करने वाला होता है, अपने भीतर कार्य नहीं कर सकता। **अपने भीतर वही आत्मा कार्य करता है या कर सकता है** जिसमें आध्यात्मिकता से बल आ चुका है। इसलिए आध्यात्मिकता का दूसरा कार्य यह है कि उससे आत्मा में अपने भीतर कार्य करने की शक्ति आती है। इस योग्यता का नाम योगदर्शन में बतलाये गये आठ अंगों में से सातवां अंग '**ध्यान**' है। आत्मा के बाहर शरीर (प्रकृति) है वह भीतर परमात्मा। जब आत्मा बाहर कार्य करता है तो उसका सम्बन्ध प्राकृतिक जगत् से रहता है, परन्तु जब अपने भीतर कार्य करता है तब उसकी प्रवृत्ति परमात्मा की ओर होती है। **परमात्मा की ओर आत्मा की प्रवृत्ति होने का नाम ही ध्यान है।** जब हम कहते हैं '**आत्मा की प्रवृत्ति**' तो अच्छी प्रकार समझ लेना चाहिए कि 'शरीर की प्रवृत्ति' अभिप्राय नहीं है। आत्मा की प्रवृत्ति जब अपने भीतर होती है तब उसके बाहर के सब इन्द्रिय-सम्बन्धी कार्य बन्द हो जाते हैं। **उसी को मन का 'निर्विषय' होना कहते हैं** और मन निर्विषय होते ही आत्मा की प्रवृत्ति भीतर की ओर हो जाती है तब वह '**ईश्वर के प्रेम में लीन**' हो जाता है।

इस अवस्था की जो सर्वोच्च स्थिति होती है जिसमें आत्मा स्वयं से बेसुध हो जाता है, उसे यदि खबर रहती है तो केवल अपने इष्ट (ईश्वर) की, और फिर वही सर्वत्र उसे दिखलाई देने लगता है। इस अवस्था का नाम योग का आठवाँ अंग '**समाधि**' है।

यही आत्म-दर्शन मानव-जीवन का अन्तिम लक्ष्य है और यही संसार यात्रा का अन्तिम पड़ाव अथवा 'ध्येयधाम' है। यहीं पहुंचने का प्रयास सब मनुष्यों को करना चाहिए। इसका आरम्भ केवल आध्यात्मिकता से ही हो सकता है। इसलिए यत्न करना चाहिए कि मानव केवल आध्यात्मिकता के प्यारे शब्द से ही परिचित न हो, प्रत्युत् उसके प्रयोजन को भी समझे तथा उससे काम भी ले।

आइये अब थोड़ा-सा पुरुषार्थ के बारे में जान लेते हैं। पुरुषार्थ से तात्पर्य मानव के लक्ष्य या उद्देश्य से है-पुरुषार्थ शब्द दो शब्दों की सन्धि से बना है-पुरुष+अर्थ। पुरुष का तात्पर्य विवेक सम्पन्न मनुष्य से है और 'अर्थ' का यहाँ पर तात्पर्य लक्ष्य की प्राप्ति है। हमारे वैदिक शास्त्रों में मनुष्य के लिए चार पुरुषार्थ बताये गये हैं, वे हैं-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। पुरुषार्थ की महिमा का वर्णन महर्षि चाणक्य ने इस प्रकार किया है:

''धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम्।।''

-(चाणक्य नीति-३/२०)

मनुष्य के जीवन का सर्वांगीण विकास सभी प्राचीन व अर्वाचीन शास्त्रों में 'पुरुषार्थ' से ही माना गया है। 'पुरुषार्थ' से व्यक्ति का विकास तो होता ही है साथ ही समाज व राष्ट्र का निर्माण भी सही दिशा में होने लगता है। इसलिए धर्म-अर्थ-काम की पूर्ति के पश्चात् अन्तिम लक्ष्य 'मोक्ष' की ओर अग्रसर होना पुरुषार्थ की अन्तिम परिणति है। यही अध्यात्मिक-जीवन का अन्तिम और चरम लक्ष्य भी माना गया है।

हमारे उपनिषदों में मोक्ष-प्राप्ति के लिए कर्म की अपेक्षा ज्ञान को अधिक महत्व दिया गया है, किन्तु मनुष्य आध्यात्मिक पथ पर चलकर ही इसे प्राप्त कर सकता है। इसीलिये वेद और उपनिषदों में प्रकाशपुंज परमात्मा से ज्ञान-प्रकाश की याचना की गई है। जन्म-मरण के बन्धन से छुटकारा पाना ही मोक्ष कहलाता है और ज्ञान-प्रकाश के द्वारा ही मोक्ष प्राप्त हो सकता है। अत: मोक्ष ही मुक्ति का सच्चा मार्ग है।

यों तो पुरुषार्थ के लिए अनेकानेक उपाय हो सकते हैं, किन्तु अपने अन्तिम लक्ष्य मुक्ति के प्राप्त्यर्थ मनुष्य के लिए मुख्यत: तीन साधन बताये गये हैं, वे तीन साधन हैं-**विद्या, कर्म व तप।** पुरुषार्थ के त्रिविध साधनों में सबसे पहला नाम विद्या का है। अब हम इस शब्द पर विचार करते हैं-

१. विद्या-मानव जीवन में विद्या का सर्वोपरि स्थान है, कहा भी गया है-'**विद्याधनं सर्वधनं-प्रधानम्**'। विद्या=ज्ञान के प्रकाश से ही मानव-जीवन आलोकित हो उठता है। विद्या के बिना मनुष्य का व्यक्तित्व संकीर्ण, मस्तिष्क सीमित व जीवन बोझिल-सा होने लगता है। इसीलिए छान्दोग्य उपनिषद् प्रथम प्रपाठक के प्रथम खण्ड के दशम मन्त्र-'**यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तंर भवतीति**'-(छोन्दोपनिषद १/०१/१०) अर्थात् जो विद्या से, ओंकार की महिमा को जानता हुआ काम करता है, श्रद्धा से और उपनिषद् के ज्ञान से काम करता है, उसका काम वीर्यशाली होता है, अधिक फलप्रद होता है।

इसका अभिप्राय यह है कि जो 'कर्म' विद्यापूर्वक, ज्ञानवान होकर श्रद्धा और मनोयोग से किया जाए, वही प्रबलतर होता है। भर्तृहरि महाराज ने अपने नीतिशतक में 'विद्या' को '**प्रच्छन्न गुप्तं धनम्**' कहा है-'**विद्या नाम नरस्य रुपमधिकं प्रच्छन्न गुप्तं धनम्।**' कहा है-(नीतिशतकम-२/२०) बृहदारण्यकोपनिषद् में विद्या को देवलोक प्रदायिनी कहा गया है-'**विद्यया देवलोको वै लोकानां श्रेष्ठ: तस्माद् विद्यां प्रशंसन्ति।**'-**(बृहदारण्यकउपनिषद्, अध्याय-१, ब्राह्मण-५, कण्डिका-१६)।** जब साधारण कर्म भी विद्या या ज्ञान के बिना कठिन है तो '**पुरुषार्थ**'

(शेष पृष्ठ 7 पर)

सम्पादकीय रामनवमी पर विशेष.....

आदर्श मर्यादा के पालक–श्रीराम

भारत में प्रतिवर्ष चैत्र सुदि नवमी को राम नवमी का पर्व बड़े उत्साह और भक्तिभाव से मनाया जाता है और भारत भर का हिन्दू चाहे वह किसी भी समुदाय से सम्बन्ध क्यों न रखता हो, इस दिन भगवान श्रीराम का जन्म दिवस मनाकर अपने आपको कृत-कृत्य समझता है। इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि भारत में और भी बड़े-बड़े महापुरूष तथा ऋषि-मुनि हुए हैं किन्तु भगवान राम के प्रति आस्था रखने वाले लोगों की संख्या इतने लाख वर्षों के बीत जाने के बाद भी कम नहीं हुई और न ही उनकी मान्यता में कोई कमी आई है। यदि इसके कारणों पर विचार करें तो यह पता चलता है कि भगवान राम का जीवन कुछ इस तरह से भारत के जन-जन के हृदय पटल पर अंकित हो गया है कि उसे काल की कोई अवधि मिटा नहीं सकती। इस देश के लोग श्रीराम को मर्यादा पुरूषोत्तम कहते हैं। इसका अर्थ यह है कि वह मनुष्य जो मर्यादा बना सकता है। भगवान राम उसकी अन्तिम सीमा थे। वह पुरूष भी उत्तम थे और उनकी मर्यादाएं भी अति उत्तम थी। हर्ष और शोक में, सुख और दुख में, मान और अपमान में, लाभ और हानि में समान एवं शांत रहना यह महापुरुषों का चिन्ह होता है। किसी कवि ने सुन्दर कहा है कि:-

उदये सविता रक्तो, रक्तश्चास्तमये तथा।
सम्पत्तौ व विपत्तौ च महतामेकरूपता।।

अर्थात् उदय होता हुआ सूर्य लाल होता है और अस्त होता हुआ सूर्य भी लाल ही होता है। इसी प्रकार सम्पत्ति और विपत्ति में महापुरुष समान ही होते हैं। सम्पत्ति प्राप्त होने पर हर्षित नहीं होते और विपत्ति पड़ने पर दुखी नहीं होते। ऐसे ही मर्यादा पुरुषोत्तम राम थे। उन्होंने मानव मात्र के लिए मर्यादा पालन का जो आदर्श प्रस्तुत किया था वह संसार के इतिहास में कहीं और नहीं मिल सकता।

उदाहरण के लिए उन्होंने अपना पहला आदर्श आज्ञाकारी पुत्र के रूप में प्रस्तुत किया। उनके पिता राजा दशरथ अपनी रानी कैकेयी से वचनबद्ध थे। रानी कैकेयी ने ठीक उस समय जब राम का राज्याभिषेक होने वाला था राम को वनवास और अपने पुत्र भरत के लिए राज्यतिलक की माँग कर दी। दशरथ नहीं चाहते थे किन्तु अपने पिता के वचन का पालन करने के लिए भगवान राम ने एक पल में राज-पाठ को त्याग दिया और वनवासी बनकर वनों को चले गए। पूरे चौदह वर्ष उन्होंने वन में बिताए ऐसा आदर्श कौन प्रस्तुत कर सकता है। संसार में जितने भी युद्ध और लडाईयाँ अब तक हुई हैं वह राज प्राप्ति के लिए हुई हैं किन्तु भगवान राम ने जो आदर्श प्रस्तुत किया उसकी कल्पना भी तो कोई नहीं कर सकता।

दूसरा आदर्श उन्होंने एक आदर्श भाई का प्रस्तुत किया। यद्यपि भरत की माता कैकेयी ने उन्हें राज-पाट के बदले वनवास दिलाया था किन्तु श्रीराम ने भरत से न ईर्ष्या की और न द्वेष। वह निरन्तर भरत के प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित करते रहे और उसे राज-काज सम्भालने की हर पल प्रेरणा करते रहे। उन्होंने उसे कभी अपना प्रतिद्वन्दी नहीं समझा। आज के समय में कोई इस प्रकार का आदर्श प्रस्तुत कर सकता है? आज के इस समय में जब जमीन जायदाद के लिए भाई-भाई के खून का प्यासा है। पतन के इस समय में मर्यादा पुरूषोत्तम राम के द्वारा स्थापित आदर्श भ्रातृप्रेम के आदर्श को अपनाकर उनसे प्रेरणा ले सकते हैं।

तीसरा आदर्श उन्होंने आदर्श पति का प्रस्तुत किया। वह चौदह वर्ष वनों में रहे और वनवासी होकर रहे। ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया और वनों में रहने वाले ऋषियों-मुनियों की सेवा का व्रत लिया। जो राक्षस ऋषियों के यज्ञ में विघ्न डालते थे उन राक्षसों का संहार किया। इस काल में उन्होंने गृहस्थ की चिन्ता नहीं की अपितु अपनी सम्पूर्ण शक्ति को राक्षसों का संहार करने के लिए लगाया। रावण ने जब उनकी धर्मपत्नी सीता को चुराने का दुस्साहस किया तो भगवान श्रीराम ने इस दुष्कृत्य के लिए रावण का सर्वनाश कर दिया। सबसे बड़ी बात यह है कि वह एक आदर्श राजा थे। आज भी लोग राम राज्य की कामना करते हैं। राज्य तो था ही राजा के लिए किन्तु श्रीराम ने राजा का जो उस समय आदर्श प्रस्तुत किया उसे आज तक कोई भुला नहीं सकता। आज समस्त संसार राम राज्य की कामना और अभिलाषा रखता है। महात्मा गांधी भी अपने देश में राम राज्य की स्थापना करना चाहते थे। राम राज्य में कोई चोर नहीं था, कोई व्यभिचारी नहीं था, कोई भ्रष्टाचारी नहीं था। किसी प्रकार का कोई कष्ट क्लेश राम राज्य में नहीं था इसीलिए सारी प्रजा सुखी थी।

संक्षेप में भगवान राम की लाखों वर्ष पश्चात भी भारतीय जनमानस में स्मृति बने रहने का मूल कारण उनका अपना आदर्श जीवन है। ऐसा आदर्श महापुरूष हमें समूचे इतिहास में कभी प्राप्त नहीं हो सकेगा। यही कारण है कि भगवान राम हिन्दू संस्कृति और सभ्यता के एक अभिन्न अंग बन गए हैं। इस जगत में जिसने भी जन्म लिया, जिसने यहां पर जीवन जिया, किसी को कोई कब तक याद रहा या नहीं रहा यह उसके कार्यों का लेखा-जोखा बताता है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम जी लाखों वर्षों के बाद भी यदि सम्पूर्ण मानव जाति के हृदय सम्राट बने हैं तो इसका मुख्य कारण है कि उन्होंने अपने जीवन को वेदानुकूल मर्यादाओं का पालन करते हुये जिया। कभी किसी प्रकार की मर्यादा को तोड़ने का प्रयास नहीं किया। हर समय मर्यादित जीवन को जिया और जीने की प्रेरणा दी। रामायण के अनेकों प्रसंगों द्वारा यह समझा जा सकता है। आज हर माता-पिता श्रीराम जैसे सुपुत्र की कल्पना करते हैं। स्त्रियां राम जैसे पति की, अनुज राम जैसे अग्रज की और देशवासी श्री राम जैसे राजा की तो यह सबसे बड़ा उच्च आदर्श सोपान है। जीवन जीने का पूर्ण पुरुष बनने का, लंका विजय पर **तेन त्यकतेन भुज्जीया** की भावना का परिचय देना व अपने देश के साथ प्रेम करना कितने ज्यादा उच्च आदर्श थे। भाई लक्ष्मण को यह उपदेश देना कि **''जननी जन्मभूमिश्च स्वार्गादपी गरीयसी''** हे लक्ष्मण माता व मातृभूमि स्वर्ग से भी ज्यादा सुख देने वाली होती है।

राम नवमी के शुभ पर्व पर भगवान राम का पवित्र और आदर्श जीवन यही प्रेरणा देता है कि हम उनकी मर्यादाओं का पालन करते हुए अपने जीवन, अपने परिवार और अपने देश को सुखी और शान्तिमय बनाएं। इस वर्ष 30 मार्च को राम नवमी का पर्व आ रहा है। हिन्दू संस्कृति से जुड़े लोग अपने-अपने ढंग से इस पर्व को मनाते हैं। नगर कीर्तन तथा शोभायात्राओं के माध्यम से श्रीराम की झाँकियां निकाली जाती हैं। सारे देश में इस पर्व को बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है परन्तु आज हमें विचार करना है कि हम कहां तक मर्यादा पुरूषोत्तम राम की मर्यादाओं तथा उनके आदर्शों को अपने जीवन में उतारने का प्रयास कर रहे हैं। भगवान राम ने जो आदर्श और भ्रातृप्रेम के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं उन आदर्शों को त्याग की भावनाओं को अपनाएं बिना हम राम राज्य की कल्पना भी नहीं की सकते। भगवान राम के गुणों को, उनके आदर्शों को अपनाकर हम राम नवमी के पर्व को सार्थक कर सकते हैं।

30 मार्च, 2023 को मर्यादा पुरूषोत्तम श्री राम का जन्मदिवस है। यह दिन भारतवर्ष के लिए प्रेरणा दिवस है। हम अपने घरों में किस प्रकार का वातावरण चाहते हैं, यह हमारे ऊपर निर्भर करता है। राम का भ्रातृप्रेम, पिता की आज्ञा का पालन करना, अपनी मर्यादाओं का पालन करने के लिए चट्टान की तरह अड़िग रहना, ये गुण हम श्रीराम के जीवन से सीख सकते हैं। श्रीराम का जीवन हमें सिखाता है कि विपरीत परिस्थितियों में भी किस प्रकार धैर्य से काम लिया जाता है। सुख और दु:ख में किस प्रकार समान भाव से रहा जाता है। आज जमीन-जायदाद के लिए भाई-भाई के खून का प्यासा है, अपने पिता तक की हत्या कर देता है, ऐसे में हम किस प्रकार मर्यादा पुरूषोत्तम श्रीराम के अनुयायी हो सकते हैं। अगर हमारी श्रीराम के प्रति सच्ची आस्था है तो हमें अपने घरों में वही मर्यादाएं, भ्रातृप्रेम तथा बड़ों के प्रति आदर्श भावनाएं स्थापित करनी होंगी। रामनवमी का पर्व हमें प्रेरणा देता है कि धर्म का पालन करने वाला व्यक्ति लाखों वर्षों के बाद भी अपने यश के द्वारा जीवित रह सकता है। इसी का प्रतीक है कि लाखों वर्षों के बीत जाने पर भी पूरी श्रद्धा और उत्साह के साथ रामनवमी का पर्व मनाया जाता है।

प्रेम कुमार
संपादक एवं सभा महामन्त्री

हम अभय रहें-अथर्ववेद

ले.-शिवनारायण उपाध्याय दादावाड़ी कोटा, (राजस्थान)

मनुष्य भय के कारण कई अवसरों पर असत्य बोलता है। असत्य को सत्य और सत्य को असत्य बताता है। भय के कारण किसी भी जोखिम भरे कार्य में भाग लेने से वह बचता है।

भय उसे विकास के पथ से विलग कर देता है। इसलिये अथर्ववेद में अभय रहने की प्ररेणा दी गई है।

यत इन्द्र भया महे ततो नो अभयं कृधि।
मघञ्छग्धि त त्वं न अतिभिर्विद्विषोवि मृधोजहि। अथर्ववेद 19.15.1

हे (इन्द्र) सब शत्रुओं के संहारक प्रभु हम (यत भयामहे) जहां से भी भय का अनुभव करते है (तत्) वहां से (नः) हमें (अभयं कृधि) अभय कीजिए। हे (मघवन) ऐश्वर्यशाली भगवन् (शग्धि) आप ही शक्तिशाली हैं। आप ही हमें अभय कर सकते है। (त्वम्) आप (तव उतिभिः) आपके रक्षणों के द्वारा (नः) हमारे (विद्विषः) विद्वेष करने वालों को तथा (मृध) हमारे शत्रुओं को (विजहि) नष्ट कर दीजिए।

भावार्थ-इस मंत्र में परमात्मा से प्रार्थना की गई है कि हमें जहां से भी भय हो वहां से अभय करें। परमात्मा चूंकि सर्वोच्च शक्ति सम्पन्न है अतः वह हमें अभय कर सकता है।

इन्द्रं वयमनूराधं हवामहेऽनु राध्यास्म द्विपदा चतुष्पदा।
या नः सेना अररूषीरूप गुर्वियूचीन्द्रि द्रुहो विनाशय।। अथर्ववेद 19.15.2

(वयम्) हम (अनूराधम्) अनुकूलता से सिद्धियों को प्राप्त करने वाले (इन्द्रम्) शत्रु संहारक प्रभु को (हवामहे) पुकारते हैं। हम (द्विपदा) द्विपाये अर्थात् अपनी संतान सेना (चतुष्पदा) गवादि पशुओं से (अनुराध्यास्म) निरंतर सिद्धियों को प्राप्त करे। (नः) हमें (अररूषीः) अदान की वृत्ति वाले लोगों की (सेनाः) सेनाएं (माउपगुः) समीपता से प्राप्त न होवें। हे (इन्द्रः) शत्रु संहारक प्रभु। (विषुचीः) विविध दिशाओं में गति वाली (द्रुहः) द्रोह की भावनाओं को (विनाशय) आप नष्ट कर दीजिए।

परमात्मा से प्रार्थना की जाती है कि वह हमें पृथ्वी लोक और द्युलोक दोनों से अभय करे।

अभयं नः करत्यंतरिक्षमभयं द्यावा पृथिवी उभे इमे।
अभयं पश्चादभयं पुरूस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु।।
अथर्व. 19.15.5

(नः) हमारे लिए (अंतरिक्षम्) अन्तरिक्ष (अभय करति) निर्भय करता हैं। (इमे) ये (उभे) दोनों (द्यावा पृथिवी) द्युलोक ओर पृथ्वी लोक (अभयम्) निर्भयता करते है। (नः) हमारे लिए (पश्चात) पीछे से (अभयम्) निर्भयता हो तथा (उत्तरात्य) ऊपर से तथा (अधरात्) नीचे से (अभयम् अस्तु) निर्भयता होवें।

भावार्थ-इस मंत्र में प्रार्थना की गई है कि वह हमें द्युलोक पृथ्वी लोक, अंतरिक्ष लोक तथा ऊपर नीचे से निर्भय करे।

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं नो परोक्षात्।
अभयंनक्तमभयं दिवा नः सर्वाआशा मममित्रं भवन्तु।।
अथर्व. 19.15.6

(मित्रान् अभयम्) मित्रों से हम निर्भय रहें। (अभित्रान् अभयम्) शत्रु से निर्भय रहे। (ज्ञातान् अभयम्) परिचित लोगों से निर्भय रहें और (परोक्षात्) जो परोक्ष हैं उनसे भी (नः) हमें (अभयम्) अभय हो। (नक्तम् अभयम्) रात्रि में हम अभय रहें। (नः) हमारे लिए (दिवा) दिन में (अभयम्) अभय हो। (सर्वः आशा) सब दिशाएं (मम) मेरी (मित्रम्) मित्र बन जाएं।

असपत्नं पुरूस्तात्पश्चान्नो अभयं कृतम्।
सविता मा दक्षिणात् उत्तरान्मा शचीपतिः।। अथर्व 19.16.1

(नः) हमारे लिए (पुरस्तात्) सामने से (असपत्नात्) शत्रु राहित्य (कृतम्) किया जाए और (पश्चात्) पीछे से (नः) हमारे लिए (अभयं कृतम्) किया जाए ओर (पश्चात्) पीछे से (नः) हमारे लिए (अभयं कृतभ्) निर्भयता प्राप्त कराएं। (सविता) सर्व प्रेरक प्रभु। (मा) मुझे (दक्षिणात्) दक्षिण से रक्षा करे तथा (शचीपतिः) सब शक्तियों का स्वामी प्रभु। (मा) मुझे (उत्तरात्) उत्तर दिशा से निर्भय करे।

भावार्थ-इस मंत्र में परमात्मा से प्रार्थना की गई है कि वह हमें सामने से पीछे से, दक्षिण दिशा से, उत्तर दिशा से अर्थात् सब ओर से निर्भयता प्रदान करें।

दिवोमादित्या रक्षन्तु भूम्या रक्षन्तग्नयः।
इन्द्राग्नी रक्षतां मा पुरूस्तादश्विनावभिः शर्मयच्छताम्।
तिरश्चीनध्न्या रक्षतुजा वेदाभूतकृतो में सर्वतः सन्तुवर्म।।
अथर्ववेद 19.16.2

(दिवाः) द्युलोक के (आदित्याः) बारह आदित्य (मा रक्षन्तु) मेरी रक्षा करें। (भूम्याः) इस पृथ्वी की (अग्नयः) अग्नियां (रक्षन्तु) मेरी रक्षा करें। (इन्द्राग्नी) शक्ति ओर प्रकाश के स्वामी (मा) मुझे (पुरस्तात्) आगे से (रक्षन्तु) रक्षा करें। (अश्विनौ) प्राण अपान (अभित्) दोनों ओर से (शर्म) कल्याण (यच्छताम्) दें। शरीर को निरोग बनाएं। (जातवेदाः) ज्ञान का उत्पादक (अघ्न्या) सदा स्वाध्याय के योग्य वेदवाणी (तिरश्चीन्) टेढ़ी चालों से मुझे दूर रखें। (भूतकृत) माता पिता और आचार्य (सर्वतः) सब ओर से (मे) मेरे (वर्म संतु) कवच बन जाएं।

भावार्थ-भूलोक के बाहर आदित्य मेरी रक्षा करें। शक्ति और प्रकाश के स्वामी इन्द्र और अग्नि मुझे सामने से रक्षित करें। इस पृथ्वी की अग्नियां मेरी रक्षा करें। प्राण और अपान मुझे निरोग बनाएं तथा पृथ्वी दोनों ओर से मेरी रक्षा करें। ज्ञान का उत्पादक प्रभु मुझे वेद वाणी द्वारा टेढ़ी चाल वाले शत्रुओं से मुझे बचाएं। माता पिता और आचार्य मेरे कवच बन जाएं।

अग्निर्मा पातुवसुभिः पुरस्तात्तस्मिन्क्रमेतस्मिञ्छूयेतां पुरे प्रैमि।
समारक्षतु समा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा।।
अथर्ववेद 19.17.1

(अग्निः) अग्रणी प्रभु (मा) मुझे (वसुभि) निवास के लिये सब आवश्यक तत्वों के साथ (पुरस्तात्) पूर्व दिशा की ओर से (पातु) रक्षा करें। (तस्मिन् क्रमे) प्रभु में स्थित होता हुआ मैं गतिशील होता हूं (तस्मिनश्रये) उसी में आश्रय करता हूं। (तां) उस (पुरं प्रैभि) ब्रह्म पुरी की ओर बढ़ता हूं। (सः) वह प्रभु (मा) मुझे (गोपायतु) वासनाओं के आक्रमण से रक्षित करें। (तस्मा) उस प्रभु के लिये (आत्मानंपरिददे) अपने को समर्पित करता हूं। (स्वाहाः) अपने को प्रभु में त्याग देता हूं।

भावार्थ-इस मंत्र में प्रभु का उपासक अपने को प्रभु को समर्पित कर देता है। वह प्रभु से ही निवास के लिये आवश्यक सामग्री की याचना करता है और चारों दिशाओं से प्रभु द्वारा रक्षित होना चाहता है।

सूर्यो मा धावा पृथिवीभ्यां प्रतीच्या दिशाः पातुतिस्मिन्क्रमे तस्मिन्छूये तां पुरं प्रैभि।
समा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परिददे स्वाहा।।
अथर्ववेद 19.17.5

(सूर्यः) निरन्तर गतिशील प्रभु (द्यावा पृथिवीभ्याम्) द्युलोक और पृथ्वी लोक के साथ (प्रतीच्याःदिशः) पश्चिम दिशा से (मा) मेरी (पातु) रक्षा करें। (तस्मिन्क्रमे) उन्हीं के साथ मैं गति करूं। (तस्मन्श्रये) उसी में मैं आश्रय करता हूं। (तां पुरं प्रैमि) उस ब्रह्मपुरी की ओर बढ़ता हूं। (सः) वह प्रभु (मा) मुझे (गोपायतु) वासना के आक्रमण से रक्षित करे। (तस्या) उस प्रभु के लिये (आत्मानं परिददे) अपने को समर्पित करता हूं। (स्वाहा) अपने को प्रभु में त्याग देता हूं।

अंत में ऋग्वेद की एक ऋचा के साथ विषय को विराम देता हूं।

यं देवासोऽवथ वाजसातो संत्रायध्वे यं पिपृक्षात्यंहः।
यो वो गोपी थे नभस्य वेद ते स्याम देववीतये तुरासः।।
अथर्ववेद 10.35.16

(शेष पृष्ठ 6 पर)

यज्ञ

ले.-श्री नरेन्द्र आहूजा

देव दयानन्द ने यज्ञ की बहुत व्यापक परिभाषा आर्योद्देश्य रत्नमाला में दी है ''जो अग्निहोत्र से ले के अश्वमेध पर्यन्त, वा जो शिल्प व्यवहार और जो पदार्थ विज्ञान है, जो कि जगत के उपकार के लिए किया जाता है उसको 'यज्ञ' कहते हैं।'' दरअसल महर्षि दयानन्द ने जिन शब्दों का प्रयोग अनेकों बार अपने ग्रंथों में किया है तथा जिनका आर्य लोक व्यवहार में बार-बार उपयोग होता है उन ईश्वर से नमस्ते पर्यन्त सौ शब्दों की यौगिक परिभाषा देव दयानन्द ने इस उद्देश्य से कर दी थी ताकि कालान्तर में कोई अन्य इनके अपनी सुविधानुसार रूढ़ि अर्थों का प्रयोग कर प्रकरणों के अर्थों का अनर्थ न कर डाले।

परन्तु लोक प्रचलित सामान्य रूढ़ि अर्थ यौगिक अर्थों का स्थान ले लेते हैं या फिर लोग अपनी सुविधानुसार इन रूढ़ि अर्थों का प्रयोग करने लगते हैं। उदाहरण के तौर पर 'जलज' शब्द का यौगिक अर्थ 'जल में उत्पन्न होने वाला' परन्तु रूढ़ि अर्थ के निरन्तर प्रयोग या प्रचलन से हम लोग यौगिक अर्थों को भूलने लगे हैं। ठीक इसी प्रकार आजकल 'यज्ञ' का रूढ़ि अर्थ लोकव्यवहार के कारण या फिर आर्यजनों ने अपनी सुविधानुसार केवल अग्निहोत्र या हवन तक सीमित कर दिया है।

आर्योद्देश्यरत्नमाला के अतिरिक्त देव दयानन्द ने 'यज्ञ' शब्द की परिभाषा स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश में दी है ''यज्ञ उसको कहते हैं जिसमें विद्वानों का सत्कार, यथायोग्य शिल्प अर्थात् रसायन जो कि पदार्थ विद्या उससे उपयोग और विद्यादि शुभ गुणों का दान, अग्निहोत्रादि जिनमें वायु, वृष्टि, जल औषधि की पवित्रता करके सब जीवों को सुख पहुँचाना है उसको उत्तम समझता हूँ।''

यज्ञ की इन दोनों परिभाषाओं में देव दयानन्द ने यज्ञ का बहुत व्यापक अर्थ बताया है जिसमें ''अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध तक'' अर्थात् अग्निहोत्र इस यज्ञ का प्रारम्भ या प्रतीक है। मात्र अग्निहोत्र यज्ञ का पर्यायवाची नहीं हो सकता, यह अग्निहोत्र एक शुरूआत है जो कि अश्वमेध तक जाती है। अश्वमेध यज्ञ उस पवित्र भावना की पराकाष्ठा है जिसके द्वारा हम 'राष्ट्रं वा अश्वमेधः' शतपथ का उद्घोष करके अपना सर्वस्व राष्ट्र को समर्पित करते हैं। 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का उद्घोष पूरे विश्व को आर्य बनाने की भावना देकर 'राष्ट्र' की सीमाओं से परे ले जाकर पूरे विश्व तक फैला देता है। यज्ञ की परिभाषा में आगे कहा ''वा जो शिल्प व्यवहार और जो पदार्थ विज्ञान है'' इसमें समस्त जगत में व्याप्त सर्वव्यापी सर्वशक्तिमान आदि गुणों वाला कर्ता धर्ता हर्ता एवं न्यायकर्ता परमपिता परमेश्वर तथा जीवात्माओं द्वारा किए जाने वाले कार्य शामिल हैं। इस यज्ञ की परिभाषा को पूरा करते हुए कहा ''जो कि जगत के उपकार के लिए किया जाता है'' यहाँ ईश्वर का प्रत्येक कार्य जगत के उपकार के लिए है ईश्वर न्यायकारी व दयालु एक साथ है। ईश्वरीय न्याय व्यवस्था ही उसकी दयालुता है। मनुष्य मात्र इन ईश्वरीय उपकारों, ईश्वर प्रदत्त ऐश्वर्यों से प्रेरणा लेकर कितना जगत का उपकार करता है यही परोपकार भाव से किए कर्म ही 'यज्ञ' की परिभाषा में आते हैं।

इसे और अधिक स्पष्ट किया जाए तो कहा जा सकता है कि '**अग्निहोत्र**' एक प्रारंम्भ या प्रतीक है जिससे प्रेरणा लेकर मानव मात्र को जीवन यज्ञ करना चाहिए। जिस प्रकार शुद्ध परिमार्जित घी औषधियुक्त सुगन्धित सामग्री से अग्निहोत्र करके हम अग्नि की सहायता से होम करते हुए कई गुणा करके पूरे वातावरण में फैला देते हैं तथा यह पर्यावरण शुद्धि, यह दान, यह सुगन्धि सबको बराबर मिलती है ठीक उसी प्रकार मानव जीवन यज्ञ में अपने सद्कर्मों की, परोपकारों की आहुति अपनी प्रज्ज्वलित आत्माग्नि में डालें तो उसकी ख्याति प्रसिद्धि व उसके उपकार सबको मिलेंगे और वह सफलतापूर्वक जीवन-यज्ञ का संपादन कर पाएगा।

इसे और अधिक विस्तार से समझें तो देव दयानन्द ने नित्यकर्म विधि के लिए पंच महायज्ञ विधि का विधान किया है अर्थात् मनुष्य मात्र को यह पांच महायज्ञ प्रतिदिन अपने जीवन में करने चाहिए। इसमें ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, बलिवैश्वदेवयज्ञ तथा अतिथियज्ञ शामिल है। इन्हें परिभाषित एवं स्पष्ट देव दयानन्द ने अपनी स्वरचित पुस्तक पंचमहायज्ञ विधि में ही किया है।

ब्रह्मयज्ञ-अपने आत्मा मन और शरीर को शुद्ध और शान्त करके उस कर्म में चित्त लगाकर (अर्थात् मंत्रों, मंत्रों का अर्थों और जो-जो करने का विधान लिखा है यथावत करते हुए) तत्पर होना चाहिए। यहाँ 'सन्ध्या अर्थात् रात और दिन के संयोग के दोनों समय सब मनुष्यों को परमेश्वर स्तुति उपासना प्रार्थना करनी चाहिए।

देवयज्ञ-सब संसार का उत्पत्तिकर्ता पालक व संहारक परमपिता परमेश्वर है उसकी प्रसन्नता के लिए हम लोग होम, अग्निहोत्र या देवयज्ञ करें।

पितृयज्ञ-पितृयज्ञ के दो भेद हैं तर्पण व श्राद्ध। जिस कर्म से विद्वान रूप देव, ऋषि और पितरों को सुख पहुँचाते है उसे तर्पण तथा इसी प्रकार इनका श्रद्धा से सेवन करना श्राद्ध कहलाता है। तर्पण व श्राद्ध केवल जीवित व्यक्तियों के लिए संभव है मृतकों के लिए नहीं क्योंकि मृतकों को सुख प्राप्ति या उनका सेवन सर्वथा असंभव है। इसीलिए पितृयज्ञ में तर्पण व श्राद्ध अपने कर्म से जीवित विद्वान रूप देव ऋषि माता-पिता के लिए करने का विधान है।

बलिवैश्वदेवयज्ञ-बलिवैश्वदेव कर्म करते हुए सभी लोग चक्रवर्ती राज्य, लक्ष्मी, घृत, दुग्ध आदि पुष्टिकारक पदार्थों की प्राप्ति और शुद्ध इच्छा से नित्य आनन्द में रहें तथा माता-पिता, आचार्य, पशु-पक्षी आदि की उत्तम पदार्थों से नित्य प्रीतिपूर्वक सेवा करते रहें जिससे वे हम पर नित्य प्रसन्न रहें। ईश्वर की आज्ञा के विरूद्ध कोई व्यवहार न करें तथा अन्याय से किसी को पीड़ा न पहुँचावें, सबको अपना मित्र व अपने को सबका मित्र समझकर परस्पर उपकार करते रहें।

अतिथियज्ञ-जो पूर्ण विद्वान, परोपकारी, जितेन्द्रिय, धार्मिक, सत्यवादी, छलकपट रहित, नित्य भ्रमण करने वाले मनुष्य जिनकी आने-जाने की कोई निश्चित तिथि नहीं होती ऐसे अतिथियों की यथावत सेवा अतिथि यज्ञ कहलाता है। यज्ञ अतिथियज्ञ करना सभी मनुष्यों का दायित्व एवं नित्यकर्म है।

इन पाँच प्रसिद्ध यज्ञों से यज्ञ के व्यापक यौगिक अर्थ का पता चलता है। इन पांच यज्ञों में से चार में भौतिक अग्नि का प्रयोग नहीं होता अपितु मनुष्य इन्हें 'मनसा वाचा कर्मणा' किया करता है। इन यज्ञों से ज्ञान प्राप्ति से आत्मा की उन्नति, आरोग्यता होने से शरीर के सुख से व्यवहार और परमार्थ कार्यों की सिद्धि होती है जिससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सिद्ध होते हैं।

'**यज्ञः देवपूजा संगतिकरण दानेषु**' से यज्ञ शब्द की व्यापकता का पता चलता है। देव वह है जो देता है और बदले में कुछ चाहता नहीं जैसे सूर्य, वायु, वृक्ष और पृथ्वी आदि जड़ देव, माता-पिता, आचार्य, सन्त आदि चेतन देव और समस्त देवों के देव परमपिता परमेश्वर हैं। पूजा का अर्थ शास्त्रानुसार '**पूजनं नाम सत्कारः**' अर्थात् यथोचित व्यवहार सत्कार करना ही पूजा है। संगतिकरण सृष्टि में उपलब्ध पदार्थों के संश्लेषण-विश्लेषण तथा संयोग-वियोग द्वारा उनके गुण दोषों का अनुसंधान करके उनसे उपयोग लेना संगतिकरण कहलाता है। यहां संगतिकरण का रूढ़ि अर्थ सिर्फ लोगों को जोड़ लेना इकट्ठा कर लेना हो गया है। दान शब्द भी व्यापक अर्थ लिए हुए है। देवों को देना दान के अन्तर्गत आता है। हम प्रकृति व समाज से जितना लें उससे कहीं

(शेष पृष्ठ 6 पर)

पृष्ठ 5 का शेष-यज्ञ

अधिक दें यही दान कहलाता है। अग्निहोत्र के माध्यम से भी हम पर्यावरण शुद्धि करते हुए सुगंधित सामग्री व औषधियों को भौतिक अग्नि में आहूत करके दे सकते हैं क्योंकि अग्नि में आहूत पदार्थ सूक्ष्म रूप में विभक्त होकर पर्यावरण में स्थित हो जाता है। इसीलिए अग्नि को देवताओं का मुख या वाहन भी कहा गया है। वैदिक आर्ष साहित्य में यज्ञ के व्युत्पत्ति अर्थों की भरमार है जिससे यज्ञ का व्यापक अर्थ सिद्ध होता है।

अध्वरो वै यज्ञः (शतपथ 1/2/4/5)

हिंसा रहित ही यज्ञ है।

यज्ञो वै नमः। (यजुर्वेद 13/8)

यज्ञ के लिए नमस्कार है।

यज्ञो वै भगः। (यजुर्वेद 11/6)

यज्ञ ही ऐश्वर्य है।

यज्ञो वै महिमा। (शतपथ 6/3/18)

यज्ञ ही महिमाशाली है।

यज्ञो वै स्वः। (यजुर्वेद 01/4)

यज्ञ ही सुखस्वरूप अर्थात् सब सुखों का प्रदाता है।

यज्ञो वै भुवनस्य नाभिः। (तैतरीय ब्राह्मण 6/4/5)

यज्ञ ही संसार का केन्द्र है।

यज्ञो वै कल्पवृक्षः। (शतपथ ब्राह्मण)

यज्ञ सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला कल्प वृक्ष है।

यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म। (शतपथ 1/7/15)

यज्ञ निचश्य ही सर्वश्रेष्ठ कर्म है।

स्वर्ग कामो यजेत। (शतपथ)

स्वर्ग सुख की कामना करने वाले को यज्ञ करना चाहिये।

एषा स्वर्ग्या यदग्निहोत्रम्। (शतपथ)

जो यह अग्निहोत्र है यह निश्चय ही स्वर्ग की नौका है।

इस प्रकार 'यज्ञ' की व्यापक परिभाषा को समझकर मनुष्य को अपना जीवन यज्ञमय बनाते हुए यज्ञरूप प्रभु को प्रसन्न करने का प्रयास करना चाहिए जो कि कर्मयोनि में उत्पन्न मानव के जीवन का लक्ष्य होता है।

पृष्ठ 4 का शेष-हम अभ्य रहें-अथर्ववेद

हे (देवासः) देवों। (यम्) जिसको आप (वाजसातौ) इस जीवन में (अवथ) रक्षित करते हो (यम् त्रायध्वे) जिसको आप रोगादि के आक्रमण से बचाते हो और (यम्) जिसको (अंहः अतिपिपृथ) पा से पार ले जाते हो। इस प्रकार (यः) जो (वः) आपके (गोपीथे) रक्षण में होता है वह (भयस्यतवेद) किसी भय को प्राप्त नहीं होता है। हे देवों। कृपा करो कि हम भी (ते स्याम्) आपके रक्षण में निडर होकर विचरें।

(तुरास) शीघ्रता से कार्य करने वाले हम (देववीतये) दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये (स्याम) होवें।

आर्य समाज वेद मन्दिर आर्य नगर का वार्षिक उत्सव

आर्य समाज वेद मंदिर आर्य नगर जालन्धर का वार्षिक उत्सव 8 मई से 14 मई 2023 तक बड़ी धूमधाम से मनाया जा रहा है। इस अवसर पर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महोपदेशक श्री विजय शास्त्री के प्रवचन व आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रसिद्ध भजनोपदेशक श्री जगत वर्मा जी के मधुर भजन होंगे। सभी धर्म प्रेमी सज्जनों से निवेदन है कि वह इस अवसर पर धर्म लाभ उठावें। जालन्धर की समस्त आर्य समाजों से निवेदन है कि वह इन तिथियों में अपनी आर्य समाज का कोई भी कार्यक्रम न रखें।**-वेद आर्य प्रधान, आर्य समाज आर्य नगर जालन्धर**

आर्य समाज शहीद भगत सिंह नगर जालन्धर का 29वां वार्षिक उत्सव

आर्य समाज मंदिर शहीद भगत सिंह नगर जालन्धर का 29वां वार्षिक उत्सव दिनांक 3 अप्रैल से 9 अप्रैल 2023 तक बड़ी धूमधाम से मनाया जा रहा है। इस अवसर पर भजन श्रीमती रश्मि घई, श्री सुरेन्द्र सिंह गुलशन, श्रीमती सोनू भारती जी के होंगे व प्रवचन आचार्य श्री दुष्यन्त शास्त्री जी के होगे। सभी धर्म प्रेमी सज्जनों से निवेदन है कि वह इस अवसर पर पधार का धर्म लाभ उठाएं।

-रणजीत आर्य प्रधान, आर्य समाज शहीद भगत सिंह नगर जालन्धर

ईश्वर को कभी मत भूलो

पं.-नंदलाल निर्भय

जगदीश्वर का है, बड़ा निराला खेल।
उसके आगे धनी-बली सब हो जाते हैं फेल।।

ईश्वर है निर्लेप, निरजन, जन्म कभी ना लेता है।
माता-पिता, गुरु है सच्चा नेताओं का नेता है।।
देवों का है देव, दयानिधि, सबसे बड़ा विजेता है।
कर्मों के अनुसार सभी को, जगदीश्वर फल देता है।।

अत्याचारी खुदगर्जी से कभी न करता मेल।
जगदीश्वर का है, बड़ा निराला खेल।।1।।

बिन हाथों के जगतपिता वह, काम निराले करता है।
न्यायकारी जगदीश निराला नहीं किसी से डरता है।।
वैदिक धर्मी गुणवानों के, कष्ट दयामय हरता है।
बिन कानों के सुनता है वह, बिन पग ईश विचरता है।।

दुष्टों की नांकों में वह, देता है डाल नकेल।
जगदीश्वर का है, बड़ा निराला खेल।।2।।

सूरज, चांद, पृथ्वी, तारे, प्रभु ने अजब बनाए हैं।
ऊँचे पर्वत, गहरे सागर, देख सभी चकराए हैं।।
तरह-तरह के पशु-पक्षी हैं, सबके मन को भाए हैं।
कीट-पतंग बनाए अनगिन, गिनती में न आए हैं।।

तरह-तरह के वृक्ष बनाए, तरह-तरह की बेल।
जगदीश्वर का है, बड़ा निराला खेल।।3।।

अखिल विश्व उस कारीगर की, बड़ी निराली माया है।
शुभ कर्मों के कारण प्रभु ने, मानव हमें बनाया है।।
पावन वैदिक ज्ञान दिया है, भला-बुरा दर्शाया है।।
वे मानव है बड़े अभागे, प्रभु उपकार भुलाया है।

धूर्त्त, नास्तिक, दुष्कर्मों से, सब जाते हैं जेल।
जगदीश्वर का है, बड़ा निराला खेल।।4।।

अगर भला चाहो तुम अपना, प्रभु को कभी न भूलो तुम।
धन-दौलत, ऊंचे पद पाकर, हे मित्रो! मत फूलो तुम।
ईश्वर भक्त बनो तुम सच्चे, बनो तपस्वी-त्यागी तुम।
राम, कृष्ण, ऋषि दयानन्द से, बनो सभी वैरागी तुम।।

फेल एक दिन हो जाएगी, जीवन रूपी रेल।
जगदीश्वर का है, बड़ा निराला खेल।।5।।

अब भी अगर नहीं जागोगे, भारी कष्ट उठाओगे।
समय निकल जाएगा, पगलो! फिर पीछे पछताओगे।
अबला, दीन, अनायों की अब, करो रात-दिन सेवा तुम।
''नन्दलाल'' सेवा करके पाओगे अद्भुत मेवा तुम।।

समझो, क्यों तुम, मूर्खता से कष्ट रहे हो झेल।
जगदीश्वर का है, बड़ा निराला खेल।।6।।

आर्य मर्यादा के ग्राहक महानुभावों की सेवा में

आर्य मर्यादा साप्ताहिक निरन्तर आपकी सेवा में पहुंच रही है। जिन आर्य मर्यादा के ग्राहकों ने अभी तक अपना वार्षिक शुल्क या पिछला शुल्क नहीं भेजा है उनसे विनम्र प्रार्थना है कि वह अपना वार्षिक शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। आर्य मर्यादा का वार्षिक शुल्क मात्र 100/- रुपये है और आजीवन सदस्यता शुल्क 1000/- रुपये है। इसलिये मेरी सभी ग्राहक महानुभावों से प्रार्थना है कि वह अपना शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। इसके साथ ही आर्य समाजों के पदाधिकारियों एवं सदस्यों से भी निवेदन है कि वह अधिक से अधिक आर्य मर्यादा के ग्राहक बनाने में सहयोग करें।

¥ àæàæãÚ¥ àÂ· ºàæ ãÚØô› ãÚ¤ôÂØè ãÚô› àæ **व्यवस्थापक आर्य मर्यादा**

पृष्ठ 2 का शेष-अध्यात्मिकता और पुरुषार्थ

आदि गहन कर्म बिना ज्ञान कैसे सम्भव हो सकता है? अतः शास्त्रों में विद्या या ज्ञान ही '**पुरुषार्थ**' का प्रमुख साधन माना गया है।

वेद और भारतीय दर्शनों में मोक्ष की प्राप्ति के लिए 'ज्ञान' को सर्वोत्कृष्ट व अपरिहार्य बताया है। कहा है-

''तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।''

-(यजुर्वेद, ३१/१८)

ज्ञान के बिना मुक्ति सम्भव नहीं है, वास्तविक-अलौकिक ज्ञान होने पर ही कैवल्य अर्थात् मुक्ति को प्राप्त किया जा सकता है-

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः। ज्ञानमेव तु कैवल्यम्।।

छान्दोग्य-उपनिषद् के अन्तर्गत ऋषि सनत्कुमार शिष्य नारद को शिक्षा प्रदान करते हुए बतला रहे हैं कि जो व्यक्ति आत्मा (परमात्मा) का ज्ञान प्राप्त कर लेता है, वह शोक-सागर को पार कर जाता है-**'तरति शोंक आत्मवित् इति'**-(छान्दो० ७/१/३)। ठीक यही ज्ञान की बात सांख्य सूक्त सं. ३/२३, व श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय-४ के श्लोक संख्या-२८ में इस प्रकार कही गई है-

१.**'ज्ञानात् मुक्तिः'** (सांख्या-सूत्र, ३/२३)।

२. **'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते'**-(भगवद्गीता-४/३८)

उपनिषदों में लोक-परलोक को ज्ञान की दो धाराओं के रूप में दर्शित किया गया है, जिसमें एक धारा है-प्रेय मार्ग की, जो भौतिक साधनों की ओर अग्रसर करती है। दूसरी धारा है-**श्रेयमार्ग की,** जो आत्मकल्याण का अलौकिक मार्ग प्रशस्त करती है।

पाश्चात्य विद्वान् अरस्तू का मानना है कि पारलौकिक कार्य मुख्य हैं और इहलौकिक (सांसारिक) कार्य गौण हैं, किन्तु भौतिक-साधनों अथवा इन्द्रियों को उन्नत किये बिना आत्मा को उन्नत नहीं किया जा सकता, इसलिए इन दोनों को एक-दूसरे का पूरक भी माना गया है।

प्रेयमार्ग मनुष्य की इच्छानुसार भोगों की प्राप्ति का एक सांसारिक मार्ग है, जिसमें मनुष्य अपने, **मन, वाणी** और शरीर द्वारा कार्य करने की ओर प्रवृत्त होता है। अतः यह मार्ग फल की कामना से कर्म करने एवं उनके सुख-दुःख को भोगने का लौकिक मार्ग है, जो अपने स्वार्थ व लाभ को ही जीवन का उद्देश्य मानते हैं। वास्तव में तो यह विषय-वासना और सांसारिक कामनाओं में व्यस्त रखने वाला मार्ग है। इस मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति को वास्तविक लक्ष्य (मुक्ति/मोक्ष) से विमुख होकर बारम्बार जन्म-मरण के भव-चक्र में घूमते रहना होता है। इसे ही शास्त्र में **'पितृयान'** कहा गया है।

दूसरा मार्ग **श्रेयस् मार्ग** है, जो आत्मकल्याण और परमपिता परमात्मा की ओर अग्रसर करने वाला मार्ग है। जिस पर चलकर मनुष्य चिर-आनन्द व मोक्ष को प्राप्त कर सकता है, इसीलिए कठोपनिषद् में श्रेयमार्ग को कल्याण का मार्ग बताया गया है।

मनुष्य की योनि को शास्त्रों में दुर्लभ और उभय-योनि कहा गया है। उभय-योनि इस कारण कि भोग भोगने के साथ-साथ मनुष्य को कर्म करने की स्वतन्त्रता है, चाहे तो शुभ-कर्म करे या अशुभ अथवा मिश्रित कर्म करे। मनुष्य अपने जीवन का निर्माता स्वयं है, परमात्मा ने उसे बुद्धि व विवेक प्रदान किया है। वह चाहे तो प्रेयमार्ग को अपनाये या श्रेयमार्ग को अथवा दोनों का सन्तुलन बनाते हुये जीवन के अन्तिम लक्ष्य (मोक्ष) की ओर अग्रसर होवे। परमात्मा ने मार्ग चयन/कर्म करने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की है। जो मनुष्य सांसारिक आकर्षणों से परे/दूर रहकर हंसवत् नीर-क्षीर विवेक द्वारा कल्याणकारी श्रेयमार्ग का वरण करते हैं, वे पर-ब्रह्म परमात्मा को प्राप्त कर लेते हैं, इसे ही उपनिषद् में **'देवयान'** कहा गया है-**'सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।'**

-(मुण्डकोपनिषद्, ३/१/६)

यजुर्वेद के अन्तर्गत प्रेयमार्ग तथा श्रेयमार्ग को क्रमशः विद्या व अविद्या कहा गया है, मन्त्र इस प्रकार है-

''विद्याञ्च अविद्याञ्च यस्तद्वेदोभयं सह।

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽतमश्नुते।। -(यजु० ४०/१४)

अर्थात् जो मनुष्य **'विद्याम् च अविद्याम् च'= ज्ञान** और कर्म इन दोनों को साथ-साथ जानता है, वह कर्म से मृत्यु को तैर कर ज्ञान से अमरत्व=अमरता को प्राप्त होता है।

(२) कर्मः-पुरुषार्थ का दूसरा नाम ही कर्म है। हमारे उपनिषदों में कर्म को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया गया है। उपनिषद् मानते हैं कि नियमपूर्वक श्रेष्ठ आचरण करने वाले मनुष्य अहिंसा का पालन करते हुए व अपनी समस्त इन्द्रियों को आत्मा में स्थापित कर, अन्तर्मुखी होकर ब्रह्मलोक को प्राप्त करते हैं-**'सखल्वेवं वर्तयन् यावदायुषं ब्रह्मलोकमभिसम्पद्यते। न च पुनरावर्तते। न च पुनरावर्त्तते।।**

-(छान्दोग्योपनिषद्-८/१५/१)

यही कारण है कि सभी वैदिक शास्त्रों में मनुष्यमात्र के उपकार के लिए ज्ञान, कर्म और उपासना के मार्ग को मोक्ष प्राप्ति के लिये दर्शाया है। वेद में ज्ञान से विवेक की उत्पत्ति, सत्कर्मों से शरीर का अन्तर्भाव और उपासना से परमगति की प्राप्ति मानी गई है। इसलिए यज्ञादि कर्म ब्रह्मविद्या के हेतु माने गये हैं, जो मोक्ष के लिए परमावश्यक हैं। जैसे ईश्वर के ईक्षण (इच्छा) का क्रियात्मक प्रकाशन यह ब्रह्माण्ड है, उसी प्रकार अपने प्रबल प्रभाव और भौतिक-साधनों के रूप में हमारे शुभ कर्म भी ब्रह्मप्राप्ति के स्वयं सिद्ध स्वतन्त्र साधन हैं।

अब अति-संक्षेप में कर्मफल पर विचार कर लेते हैं। मनुष्य को कर्मफल सदा कर्म के अनुसार मिलता है। कर्म मुख्यरूप से दो प्रकार के होते हैं-१. सकाम कर्म और २. निष्काम कर्म। इनमें जो सकाम कर्म हैं, उसके तीन भेद किये गये हैं-१. शुभ कर्म (पुण्य कर्म), २. अशुभ कर्म (पाप कर्म) तथा ३. मिश्रित कर्म (पाप और पुण्य दोनों प्रकार के मिले-जुले कर्म/जीवात्मा के रूप में मनुष्य तीनों प्रकार के कर्मों में लिप्त रहता है। कभी वह शुभ कर्म जैसे-सेवा, दान, परोपकार आदि के कार्य करता है, कभी वह अशुभ कर्म जैसे-चोरी, जारी, झूठ बोलना आदि के कार्य करता है तो कभी कभी वह शुभ-अशुभ दोनों प्रकार के कर्म करता है, जैसे-किसान का कार्य खेती करना आदि-आदि। निष्काम कर्म सदा शुभ (अच्छे) ही होते हैं, बुरे कभी नहीं होते। सकाम कर्मों का फल अच्छा या बुरा होता है, जिसे मनुष्य इस जीवन में या मरने के बाद मनुष्य, पशु-पक्षी, कीट-पतंगे आदि शरीरों में आने वाले जीवन में अवश्य भोगता है। निष्काम कर्मों का फल ईश्वरीय आनन्द की प्राप्ति के रूप में मनुष्य को मिलता है, जिसे वह अपने जीवित रहते हुए समाधि-अवस्था में अथवा मृत्यु के उपरान्त बिना जन्म लिए मोक्ष-अवस्था में भोगता है।

३. तपः-पुरुषार्थ के तीसरे साधन का नाम **'तप'** है। योगदर्शन के साधन पाद में 'तप' को क्रिया योग का प्रथम अंग बताया गया है। वहाँ पर तप का अर्थ सभी प्रकार के 'द्वन्द्वो को सहजता से सहन करना कहा है। अब प्रश्न यह है कि द्वन्द्व किसे कहते है? द्वन्द्व का अर्थ है-अनुकूल तथा प्रतिकूल परिस्थितियों का जीवन में आना। जैसे-सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, हानि-लाभ, जय-पराजय, सुख-दुःख मान-अपमान आदि-आदि। ये परिस्थितियाँ हरेक के जीवन में न्यूनाधिक रूप से उपस्थित होती ही हैं। विषम-परिस्थितियों को सहजता से सहन करना ही 'तप' है-'तपो द्वन्द्व सहनम्'। जैसे-एक कुशल घुड़सवार किसी चञ्चल घोड़े को नियन्त्रित करता है, वैसे ही जब मनुष्य अपने शरीर, प्राण, इन्द्रियों व मन को उचित रीति और अभ्यास से अपने वश में कर लेता है तो वह उसका 'तप' कहलायेगा।

मानव जीवन में तप का पालन करना अनिवार्य माना गया है। 'तप' मनुष्य को आत्म-परिशोधन के माध्यम से मोक्षोन्मुखी बनाता है। तप के लिए सबसे पहले मनुष्य को अपनी इन्द्रियों को वश में करना होता है, फिर मन की एकाग्रता और शनैः-शनैः ध्यान का अभ्यास करते हुए ईश्वर के चिन्तन में निमग्न हो जाना होता है। अन्त में साधक मनुष्य समाधि की अवस्था में पहुँच जाता है और वह कल्याण मार्ग का पथिक बन जाता है। मोक्ष-सुख की ओर अग्रसर हो जाता है, यही मानव जीवन का चरम लक्ष्य भी है।

आर्य समाज मंदिर बस्ती बाबा खेल जालन्धर में ऋषि बोधोत्सव धूमधाम से मनाया

आर्य समाज मंदिर बस्ती बाबा खेल जालन्धर द्वारा महर्षि दयानन्द सरस्वती जी की जन्म शताब्दी को समर्पित समारोह 8 मार्च से 12 मार्च 2023 तक बड़ी धूमधाम से मनाया गया। इस अवसर पर चित्र प्रथम पर आर्य समाज के सदस्य हवन यज्ञ करते हुये जबकि चित्र दो में आर्य विद्या परिषद पंजाब के रजिस्ट्रार श्री अशोक परूथी जी एडवोकेट, आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के मंत्री श्री सुदेश कुमार जी को सम्मानित करते हुये आर्य समाज के सदस्य एवं पदाधिकारी जबकि उनके साथ खड़े हैं आर्य समाज वेद मंदिर भार्गव नगर जालन्धर के प्रधान श्री कमल किशोर आर्य जी एवं अन्य। चित्र तीन में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के मंत्री श्री सुदेश कुमार जी एवं श्री कमल किशोर जी आर्य समाज के सदस्य को सम्मानित करते हुये।

आर्य समाज मंदिर, बस्ती बाबा खेल जालन्धर की तरफ से स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की दूसरी जन्म शताब्दी को समर्पित कार्यक्रम 8 मार्च से 12 मार्च 2023 तक बड़ी धूमधाम से मनाया गया। इस अवसर पर 8 मार्च से 11 मार्च तक हवन यज्ञ सायं 7.00 बजे से 8.00 हुआ। पंडित विजय कुमार जी शास्त्री द्वारा वेद कथा सायं 8.00 बजे से रात्रि 10.00 बजे तक हुई। 10 मार्च को भजन संध्या का कार्यक्रम किया गया जिसमें श्री बुधदेव जी, श्री पंडित रमेश आर्य जी, श्री योगेश जी एवं अन्यों द्वारा भजन प्रस्तुत किये गये। मुख्य कार्यक्रम 12 मार्च रविवार को हुआ जिसमें प्रात: 9.30 बजे से 10.30 बजे तक विश्व शांति महायज्ञ का आयोजन किया गया जिसके ब्रह्मा श्री विजय कुमार जी शास्त्री एवं श्री मनोहर लाल जी आर्य मुसाफिर थे। हवन यज्ञ के पश्चात आर्य विद्या परिषद पंजाब के रजिस्ट्रार श्री अशोक परूथी जी एडवोकेट द्वारा ध्वजारोहण किया गया। इसके पश्चात स्वामी सदानन्द जी सरस्वती अध्यक्ष दयानन्द मठ दीनानगर की अध्यक्षता में कार्यक्रम आरम्भ हुआ। इस अवसर पर श्री अशोक परूथी जी एडवोकेट ने अपने सम्बोधन में कहा कि आर्य समाज के नियमों को बनाते समय महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने आर्य समाज का जो लक्ष्य निर्धारित किया है, उसे पूरा करने के लिए संगठित होने की आवश्यकता है। उन्होंने अपने राष्ट्र का नहीं, आर्य समाज का नहीं अपितु संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य बताया ताकि हम अपने उद्देश्य से भटक न जाएं। महर्षि दयानन्द के जन्मदिवस पर हमारा लक्ष्य होना चाहिए कि हम लोगों को आर्य समाज के बारे में जानकारी दें। आर्य समाज के बारे में आम जनता में जो भ्रान्तियां फैल चुकी हैं, उन्हें दूर करने के लिए उन्हें आर्य समाज के सिद्धान्तों से अवगत कराएं। आर्य समाज की स्थापना के पीछे महर्षि दयानन्द जी का यही उद्देश्य था कि समाज में धर्म के नाम पर जो आडम्बर दिखाई दे रहा है, मूर्ति पूजा के कारण जो अन्धविश्वास फैल रहा है, सम्प्रदायवाद के कारण जो लड़ाई झगड़े हो रहे हैं, उन्हें दूर किया जा सके। सत्य सनातन वैदिक धर्म को अपनाकर सभी लोग संगठित होकर विदेशियों की दासता से मुक्त हों। महर्षि दयानन्द किसी नए पन्थ की मत की स्थापना नहीं करना चाहते थे। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश में लिखते हैं कि– मैं अपना मन्तव्य उसी को मानता हूं जो तीन काल में सबको एक सा मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है किन्तु जो सत्य है उसको मानना, मनवाना और जो असत्य है उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझ को अभीष्ट है। इस अवसर पर आप के विधायक शीतल अंगुराल, पूर्व विधायक श्री सुशील कुमार रिंकू, भाजपा प्रदेश प्रवक्ता श्री मोहिन्द्र भगत, भाजपा नेता शिव दयाल माली तथा शहर के गणमान्य व्यक्ति उपस्थित थे। आर्य समाज वेद मंदिर बस्ती बाबा खेल जालन्धर के पदाधिकारियों ने स्मृति चिन्ह एवं सिरोपा भेंट कर सम्मानित किया। मंच का संचालन श्री निर्मल आर्य जी सचिव ने बखूबी निभाया। उन्होंने सभी गणमान्य व्यक्तियों तथा इलाका निवासियों का धन्यवाद करते हुये कहा कि आप सबके सहयोग से ही हम यह कार्यक्रम सफल कर पाये। इस अवसर पर आर्य समाज बस्ती दानिशमंदा जालन्धर के प्रधान श्री यशपाल आर्य, आर्य समाज आर्य नगर जालन्धर के प्रधान श्री वेद आर्य जी, गांधी नगर–1 के प्रधान श्री राजपाल जी, गांधी नगर–2 के प्रधान श्री सूबेदार अमर नाथ जी, आर्य समाज वेद मंदिर भार्गव नगर के प्रधान श्री कमल किशोर जी, आर्य समाज दयानन्द नगर गढा के प्रधान श्री सम्मा राम जी, कबीर नगर से श्री रूढमल जी मौजूद थे। इस कार्यक्रम को सफल बनाने में आर्य समाज के संरक्षक श्री ओम प्रकाश जी, प्रधान श्री जोगिन्द्र पाल जी, कोषाध्यक्ष श्री ओम प्रकाश डोगरा, महासचिव श्री सुरेन्द्र आर्य जी, श्री बिशम्भर दास जी, रमेश भगत जी, श्रीमती रंजना आर्य, श्रीमती विश्वा कुमारी, श्रीमती निर्मल आर्य, श्रीमती आरती, श्रीमती पूनम, श्रीमती वीना आर्य, आर्य समाज के सदस्यों एवं पदाधिकारियों ने पूरा पूरा सहयोग दिया।

–सुरेन्द्र आर्य महासचिव आर्य समाज बस्ती बाबा खेल जालन्धर

वेदवाणी

हमें श्रेष्ठ बना दो!

यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ताइव स्मसि।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु तुवीमघ।।

–ऋक्० १।२९।१; अथर्व० २०।७४।१

ऋषि:–**शुन: शेप: आजीगर्ति:।।** देवता–**इन्द्र:।।** छन्द:–**पङ्क्ति:।।**

विनय–यद्यपि हम बुरे हैं, अप्रशस्त हैं, तो भी हे इन्द्र! तुम हमें श्रेष्ठ बना दो, प्रशस्त बना दो। तेरे भक्त होकर हम बिलकुल गये–बीते तो नहीं हो सकते, तो भी हममें जो बुराइयाँ सी हैं उन्हें तुम अपनी दया से दूर कर दो। तुम्हारी दया पाकर हम प्रशस्त न बन सकेंगे तो हम और प्रशस्त कैसे बनेंगे? हे सत्यस्वरूप! हे सोमपान करने वाले! तुम अपनी सत्यमयता द्वारा, अपने सोमपान के गुण द्वारा हमें प्रशस्त कर दो। इस संसार में भौतिक साधारण प्रशस्तता भौतिक सम्पत्तियों द्वारा होती है, इसलिए हे बहुत ऐश्वर्य वाले! तुम हमें गौओं और अश्वों के दान द्वारा और इन गौओं और अश्वों के शोभन प्रकार के तथा बहुत संख्या में दान द्वारा प्रशस्त बना दो। हम लोगों में बड़ी सुन्दर–सुन्दर गौएँ और अश्व हों तथा ऐसी सहस्रों गौएँ और अश्व हों, पर ये बाहर की गौएँ और अश्व निरर्थक हैं, भारभूत हैं और हमें पराधीन करने वाले हैं जब तक कि हम लोग अन्दर की असली गौओं और अश्वों में प्रशस्त न हों। हमें वास्तव में प्रशस्त बनाने वाली जो असली गौएँ हैं वे तो वाणी आदि इन्द्रयाँ हैं, आत्मशक्तियाँ हैं; और जो असली अश्व हैं वे वीर्य आदि हैं, आत्मतेज हैं। ये ही हमारे अपने गौ और अश्व हैं। हे तुवीमघ! तुम अपने सत्य द्वारा हमारी वाणी आदि इन्द्रियों को श्रेष्ठ, सुन्दर और शुभ्र बनाओ तथा ऐसी कृपा करो कि ऐसी सुन्दर आत्मशक्तियाँ हममें सहस्रों प्रकार से प्रकट हों, तुम अपने सोमपान के गुण द्वारा हमारे वीर्य आदि बलों को उत्तम, तेजस्वी और शोभन बनाओ तथा ऐसी कृपा करो कि ये आत्मतेज हममें हज़ारों प्रकार से चमके। हे इन्द्र! इस प्रकार तुम हम अप्रशस्तों को प्रशस्त कर दो, गौओं और अश्वों द्वारा प्रशस्त कर दो।

स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की तरफ से मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक प्रेम भारद्वाज द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर पंजाब से मुद्रित एवं गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से प्रकाशित।
सम्पादक–प्रेम भारद्वाज
पीआरबी एक्ट के तहत प्रकाशित सामग्री के चयन हेतु उत्तरदायी किसी विवाद का न्यायिक क्षेत्र जालन्धर होगा। आर एन आई संख्या 26281/74 E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org